Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 12, Issue No. 2, January-2017, ISSN 2230-7540

रस-सिद्धान्त का अन्य काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के साथ सम्बन्ध

Hargian[1]* Dr. Gobind Dawedi[2]

[1] Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

[2] Assistant Professor, OPJS University, Churu, Rajasthan

सार - काव्यशास्त्रा के विद्यार्थी को रस-सिद्धान्त की जानकारी के लिए यह जानना आवश्यक है कि रस के साथ वातावरण या समकालीन काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों (वादों) का भी ज्ञान हो। इस अध्याय में रस का अन्य सम्प्रदायों ध्वनि और रस, रीति और रस, अलंकार और रस, वक्रोक्ति और रस तथा औचित्य और रस संबंधों पर चर्चा की गई है।

----------X----------

1. ध्वनि सिद्धान्त और रस:

ध्वनि सिद्धान्त के प्रवत्र्तक आचार्य आनन्दवर्धन जी हैं। जहां अर्थ अपने आपको अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके प्रतीयमान अर्थ को व्यक्त करते हैं, उस काव्य विशेष को आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि कहा है।1 इन्होंने ध्वनि को काव्य की आत्मा माना है। ध्वनि सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्राथमिक विवेचन हमें उन कारिकाओं में मिलता है, जिनकी रचना आनन्दवर्धन ने की या किसी दूसरे व्यक्ति ने परन्तु फिर भी सम्पूर्ण ध्वनि सिद्धान्त रस की भावना से ओत-प्रोत है। आनन्दवर्धन या इनके परवर्ती अनुयायियों ने स्थान-स्थान पर रस के महत्त्व का कीर्तन किया है। रस ध्वनि को काव्य का उत्तम रूप मानकर यह सिद्ध कर दिया की काव्य की आत्मा ध्वनि है और ध्वनि की आत्मा रस है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ध्वनि और रस का संयोग कल्पना तथा भावना का सहयोग है तथा दोनों का प्रतियोग भी कल्पना तथा भावना का प्रतियोग है। जिस प्रकार केवल भावना या केवल कल्पना से कवित्व की सिद्धि सम्भव नहीं, इसी प्रकार केवल भाव या केवल ध्वनि के आधार पर भी काव्य का अस्तित्व सम्भव नहीं हो सकता-दोनों के पूर्ण संयोग से ही काव्य की सृष्टि होती है। यदि दोनों में प्रतिभोग उपस्थित हो जाता जाए दोनों का सांपेक्षिक महल आंकना पड़े तो भी हमें कल्पना और भाव के प्रतिभोग अथवा सापेक्षिक महत्त्व के आधार पर ही निर्णय देना पड़ेगा और यह निर्णय कठिन नहीं है।2

ध्वनिवादि आचार्यों ने रस को ध्वनि का एक भेद माना है। रस, भाव रसाभास आदि को ध्वनि का एक भेद स्वीकृत करने में आनन्दवर्धन का तर्क यह है कि रसादि की अनुभूति व्यंजना वृति (ध्वनि) द्वारा होती है न कि अभिधा वृति के द्वारा।3

रस-ध्वनि:

जहां व्यंग्यार्थ विभाव, अनुभाव और संचारीभाव के संयोग पर आधारित होता है वहां रस ध्वनि मानी जाती है। काव्यशास्त्रा में रस से तात्पर्य है रसादि अर्थात् रस, भाव, रसाभास-भावाभास, भावोदय, भावसन्धि, भावसबलता और भावशान्ति। अतः इसे रस ध्वनि कहा जाता है। इसी का नाम असंलक्ष्य-क्रमव्यंग्य ध्वनि है-जहां वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ में क्रम होता हुआ भी लक्षित न हो। ध्वनि के अन्य भेदों की तुलना में इसमें वाच्यार्थ के उपरान्त व्यंग्यार्थ की प्रतीति इतनी त्वरित होती है कि लक्षित नहीं होती।4

रैदास की वाणी रस ध्वनि वर्णन करने से पूर्व यह जानना आवश्यक होता है कि प्रत्येक काव्य की दो अनिवार्य शर्तें होती हैं। पहली हृदय की सच्ची अनुभूति और दूसरी कल्पना, आध्यात्मिक काव्य के लिए वास्तविक सौन्दर्य वही है जिससे कवि ने अपने जीवन अनुभव किया हो और जिसे वह सर्वसाधारण द्वारा अनुभूत क्षण स्थायी सौन्दर्य के आधार पर व्यक्त करता है। निर्गुण कवि प्रधानतः कवि नहीं थे। उन्हें काव्य के विषय में तथा काव्य के तत्त्वों के बारे में उन्हें कोई ज्ञान नहीं था। काव्य का कलात्मक निर्माण उनका उद्देश्य नहीं था। उन्हें ऐसे कवियों से घृणा थी जो काव्य रचना को अपना

www.ignited.in

लक्ष्य मानते थे। संत रविदास की वाणी में रस ध्वनि का प्रयोग इस ढंग से किया जा सकता है-

परम पारस गुरु भेटिए, पूरब भिषत लखाट,

पारस परसै दबिधा न होई।5

जब तक शिष्य रूपी जंग लगे लोहे का पासरमणि रूप गुरु अथवा ब्रह्मा से साक्षात्कार नहीं होता तो वह स्वर्ण कैसे बन सकता है लेकिन इस वाणी को दूसरे भाव से देखने पर प्रतीत होता है कि जिस प्रकार पारसमणि लोहे को भी सोना बना देती है उसी प्रकार कितना चमत्कारमय भाव इन पंक्तियों में परिलक्षित हुआ है। पारसमणि रूपी गुरु की प्राप्ति होने पर मायाग्रस्त शिष्य भी स्वर्णमय हो जाता है। यहां पर अद्भुत रस का भाव उजागर हुआ है। जो एक रस ध्वनि भी है।

2. रीति-सिद्धान्त और रस:

रीति शब्द रीड़गतौ धातु से क्तिन प्रत्यय करने पर रीति शब्द की निष्पत्ति हुई है। 'रीयते अस्याम् इति रीतिः अर्थात् रीति वह है जिस पर गति की जाती है। तात्पर्य यह है कि जिस पर चलकर काव्य रचना की जाती है, वह मार्ग रीति कहलाता है।6

रीति सम्प्रदाय के प्रवत्र्तक आचार्य वामन ने लिखा है- 'विशिष्ट पद रचना रीतिः' अर्थात् विशिष्ट प्रकार की पद रचना ही रीति है। वामन की पद रचना का अभिप्राय पदों की संघटना से है। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर की रचना विधाता एक संघटना है व उसमें शरीर के अंग-प्रत्यंगों को उनके उचित स्थान पर रखकर सारे शरीर की संघटना की गई है, उसी प्रकार साहित्यकार भी साहित्य की संघटना इस तरह से करता है कि उसके सौन्दर्य और उपयोगिता में कोई हीनता या दोष दिखाई न दे।

रीति और रस के परस्पर संबंध को स्पष्ट करने के लिए दो प्रश्नों को आचार्यों ने आवश्यक माना है। रसवादी आचार्यों का रीति के प्रति दृष्टिकोण और रीतिवादी आचार्यों का रस के प्रति दृष्टिकोण क्या रहा है? साहित्यदर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने रीति स्वरूप को इस प्रकार प्रकट किया है-

पदसंघटना रीतिरंगसस्थाविशेषवत्

उपकत्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा।7

अर्थात् रीति पर संघटना-रूप है। काव्य में वह अंग-संस्थानवत् है। रसादि की वह उपकत्राी है व रीतियाँ चार प्रकार की है। यहां स्पष्ट है कि विश्वनाथ जी 'रीति' को 'रस' का अंग मानते हैं और उसे अंग संस्थान से अधिक महत्त्व प्रदान नहीं करते। इनके अनुसार 'रस' अंगी और 'रीति' अंग है। दोनों में अंग-अंगी संबंध है। जबकि आचार्य वामन ने 'काव्यलंकारसूत्रा' में रीति को काव्यात्मा कहकर 'रस' को काव्य के एक अर्थ-गुण 'कांति' का आधार-मात्रा माना है। वे कहते हैं-दीप्तरसत्व कांति।8

डॉ. नगेन्द्र ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी रीति का अंगत्व सिद्ध कर दिखाया है। उनके विचार से माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों में क्रमशः चित्त की द्रुति, दीप्ति और परिव्याप्ति रूप रस-दशा के पूर्व स्थितियाँ अवस्थित रहती हैं।10 डॉ. नगेन्द्र भी रीति के स्वरूप को अधिक वस्तुगत और रस के स्वरूप को अधिक व्यक्तिपरक मानते हैं और रस अंगी व रीति को उसका अंग स्वीकार करते हैं।11

3. अलंकार सिद्धान्त और रस:

अलंकार सिद्धान्त प्रवर्तन आचार्य भामह ने किया था। इस विषय में भामह का अनुकरण दण्डी और उद्भट ने किया। अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति 'अलं क्रियते नेन इति अलंकारः' है, जिसके द्वारा अलंकृत किया जाता है अलंकरोति इतिअलंकारः (जो अलंकृत करता है) इन दोनों व्युत्पत्तियों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों का अर्थ है जिस तत्त्व से काव्य की शोभा होती है, उसे अलंकार कहते हैं किन्तु पिफर भी वाच्य प्रयोग के आधार पर पहली व्युत्पत्ति कवि की दृष्टि से मानी जाती है जो कि काव्य रचना के समय सायास अथवा अनायस रूप से अलंकारों का प्रयोग करता है। दूसरी व्युत्पत्ति समीक्षक की दृष्टि से मानी जाती है जो यह देखता है कि कवि द्वारा किन अलंकारों का प्रयोग समीक्षा रचना में किया गया है। यह बहुत स्थूल अन्तर है और बहुत अधिक सटीक भी नहीं। इन अलंकारवादियों ने रस, भाव, रसाभाव एवं भावाभास को रसवत्, प्रेमवत और उर्जस्वित अलंकारों के नाम से अभिहित किया है। आचार्य दण्डी ने रसवत् अलंकार की सीधी-सादी परिभाषा दी है- रसवद् रसपेशलम्।

ऊर्जस्वित अलंकार की भामह और दण्डी ने व्यख्या प्रस्तुत की है। इनके अनुसार इस अलंकार का संबंध केवल ऊर्जस्वि वचनों से हैऋ रस और भाव संबंधी किसी औचित्य से नहीं है। परन्तु उद्भट ने ऊर्जस्वि के इस रूप को अपनी परिभाषा में और भी स्पष्ट किया है-

अनौचित्यप्रवृताना कामक्रोधाविकारणात्

भावाना च रसना च बन्ध ऊर्जस्वि कथ्यते।

अर्थात् काम, क्रोध आदि कारणों से रसों और भावों का अनौचित्य रूप से प्रवञ्तन ऊर्जस्वि अलंकार का विषय है।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार वस्तु आदि आचार्य काव्य के अनुसार सान्दर्य पर बल देते हैं। भाव की उपेक्षा वे नहीं करते हैं किन्तु उनकी दृष्टि में गुण है। कवित्व, उनके मत से कथन की चारुता का नाम है। कथ्य, जिसे भाव और विचार दोनों अन्तर्भूत हैं, कथन की चारुता का ही अंग या उपकरण है। उदाहरण के लिए अलंकार सिद्धान्त के अनुसार अलंकार की काव्य की शोभा के कारण हैं-काव्य का सौन्दर्य अलंकार पर आश्रित है, कवित्व अलंकार में नहीं। अलंकार शब्दार्थ के धर्म हैं, साधारण धर्म नहीं-अर्थात् ऐसे धर्म नहीं जिनका प्रयोग सामान्य भाषा में होता है, वर्ण शेष धर्म जो शब्दार्थ में सौन्दर्य की सृष्टि उसे काव्य का रूप प्रदान करते हैं। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार-अलंकार रस के उपाकारक ही नहीं, वे रस की अभिव्यक्ति के अनिवार्य माध्यम हैं। काव्य की भाषा (रस की अभिव्यक्ति) व्यापक अर्थ में - अलंकृत ही हो सकती है - कोई भी कृति कवि चमत्कारविहीन शब्दार्थ के माध्यम से रमणीय अर्थ या भाव का प्रतिपादन नहीं कर सकता और न कोई कृति आलोचक ही इसे सिद्ध कर सकता है।12

4. औचित्य सिद्धान्त और रस:

काव्य में 'औचित्य' और 'रस' के परस्पर संबंध, स्थान एवं महत्त्व के विषय में क्षेमेन्द्र का अभिमत क्या था? इस पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। तद्विषयक प्रमुख तीन धारणाएँ इस प्रकार हैं। क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य' को एक काव्य-सम्प्रदाय माना है और 'औचित्य' को काव्य आत्मा। इस धारणा के पोषक हैं- डॉ. सूर्यकान्त शास्त्री, डॉ. मनोहर लाल गौड़ और राम लाल सिंह।13

क्षेमेन्द्र रस को ही काव्यात्मा मानते हैं, किन्तु 'रस सिद्ध' काव्य को भी औचित्य-नियन्त्रित मानते हैं। पं॰ बलदेव उपाध्याय और डॉ. राघवन इसी मत के हैं।14

क्षेमेन्द्र का काव्यात्मा से कोई संबंध नहीं वे तो मात्रा समीक्षक की दृष्टि से-'औचित्य' को लेकर किसी भी कृति में अंगांगी की परस्पर सुनियोजना पर विचार करते हैं और रस को भी विवेचन के प्रसंग में अंग-रूप में स्वीकार करते हैं। डॉ. रामपाल विद्यालंकार इसी धारणा के समर्थक हैं।15

उक्त तीनों धारणाओं की उत्पत्ति क्षेमेन्द्र के ही निम्नलिखित सूत्रा के व्याख्या-भेद से हुई प्रतीत होती है-

औचित्यम् रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्।16

प्रस्तुत सूत्रा में 'जीवितम्' शब्द का अर्थाख्यान ही महत्त्वपूर्ण व व्याख्या भेद का कारण है। क्षेमेन्द्र के समय 'जीवित' शब्द 'आत्मा' के अर्थ में प्रयुक्त होता था। स्वयं क्षेमेन्द्र ने भी 'रसजीवितभूतस्य विचारञ्र क्रियतेधुना।17

जीवित शब्द का प्रयोग 'आत्मा' के अर्थ में किया है। वक्रोक्तिकार भी 'वक्रोतिः काभजीवितमफ' कहकर 'जीवितम' को आत्मा के अर्थ के अर्थ में ग्रहण करता है, किन्तु क्षेमेन्द्र उक्त सूत्रा में 'काव्य' को 'रस सिद्ध' कहकर प्रथमतः रस को काव्यात्मक मान लेते हैं, तत्पश्चात् जीवितम शब्द को 'स्थिर' विशेषण से संयुक्त करके उसे 'दीर्घ जीवन' के पर्याय-रूप में ग्रहण करते हैं। अतः स्पष्ट है कि क्षेमेन्द्र 'औचित्य' को काव्यात्मा के रूप में स्वीकार न करके उसे मात्रा इस युक्त काव्य के दीर्घ जीवन के रूप में ही ग्रहण करते हैं जिस प्रकार आचार्य आनंदवर्धन 'रस ध्वनि' की बात करते हुए भी 'रस' को ही काव्यात्मा मानते हैं और अन्ततः प्रसिद्ध औचित्य धुस्तु रसस्योपनिषत् परा' कहकर औचित्य को रस का परम रहस्य स्वीकार करते हुए भी 'रसवादी' धारा से विमुक्त नहीं होते।18

5. वक्रोक्ति सिद्धान्त और रस:

कुन्तक ने उच्च स्तर से 'सालकास्य काव्यता' की घोषणा की है, पिफर भी उनकी सहृदयता रस का अनादर नहीं कर सकी। सिद्धान्त रूप से वक्रोक्ति और रस में वैसा मौलिक साम्य तो नहीं जैसा ध्वनि और वक्रोक्ति में है, किन्तु सब मिलाकर वक्रोक्ति-चक्र में रस का स्थान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, वास्तव में यह कहा असंगत न होगा कि रस के प्रति वक्रोक्ति और ध्वनि दोनों सम्प्रदायों का दृष्टिकोण बहुत कुछ समान है।

सबसे पूर्व तो कुन्तक ने काव्य के लक्षण और प्रयोजन के अन्तर्गत ही रस का महत्त्व स्वीकार किया है काव्य-लक्षणः

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकवियात्यापारशा लिनी।

बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाहादकारिणि।।19

इसमें काव्यबन्ध के लिए वक्रकवि व्यापार के साथ ही तद्विदाहलादकारिता को भी अनिवार्य माना गया है, 'तद्विह' का अर्थ है काव्य-मर्मज्ञ अतएव इनके अनुसार काव्य को अनिवार्यतः सहृदय आहलादकारी होना चाहिए। तदनन्तर काव्य प्रयोजन के सन्दर्भ में ये कहते हैं कि -काव्यामृत का रस

www.ignited.in

उसको समझने वालों (सहृदयों) के अन्तःकरण में चतुर्वर्ग रूप पफल के आस्वाद से भी बढ़कर चमत्कार उत्पन्न करता है।20

अलंकार, रीति और वक्रोक्ति का रस के साथ वही सम्बन्ध है जो आधुनिक आलोचनाशास्त्रा की शब्दावली में काव्य के अन्तर्गत कला तत्व का अनुभूति तत्त्व के साथ है, काव्य में दोनों का समन्वय अनिवार्य है, वास्तव में आज दोनों के तादात्म्य का नाम ही काव्य माना जाता है। कला या कलात्मक अभिव्यक्ति के बिना भाव-विभूति केवल अनुभव का विषय ही रह जाती है और भावना के संस्पर्श के बिना कला शब्द क्रीड़ा मात्रा है। दोनों के विषय में अतिवाद से हानि हुई है-कला के क्षेत्रा में तो अतिवाद के कारण अनर्थ होता ही आया है, किन्तु रस विषयक अतिवाद भी मान्य नहीं हो सकता: जिस प्रकार भाव विरहित कला काव्य नहीं है, उसी प्रकार केवल भाव का उद्गाह काव्य नहीं है, क्योंकि ऐसा मान लेने पर तो प्रत्येक व्यक्ति ध्वनि के हर्ष विषाद का उद्रेक काव्य हो जाएगा।21

6. साधारणीकरण:

'साधारणीकरण' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है- असाधारण का साधारण रूप में उपस्थित होना। जब काव्य में वर्णित 'राम' नाम न रहकर एक सामान्य पुरुष और 'सीता' सीता न रहकर एक सामान्य कामिनी के रूप में भाषित होने लगते हैं तब वह साधारणीकरण की स्थिति को प्राप्त करते हैं।

आचार्य अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के मत का उल्लेख करते हुए कहा-निवि-निज-मोह, संकट तानिवारण-कारिणा, विभावादिसाधारणीकरणात्मना, अभिछातो द्वितीमांशेन भावकत्वव्यापारेण भावयमानो रसः।22

अर्थात् भावकत्व व्यापार ही साधारणीकरण है इसमें विभावादि अर्थात् आलम्बन, उद्दीपन विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों का स्थायी भावों के कारण संयोग साधारणीकरण है।

डॉ. जगदेव सिंह विद्यालंकार ने अभिनवगुप्त के मत के सन्दर्भ में कहते हैं कि साधारणीकरण रस का सिद्धान्त भट्टनायक के मत से भिन्न नहीं है। अभिधा के अर्थ बोध होने के बाद विभावन के द्वारा पाठकों और पेरक्षकों का विभावादि के साथ सम्बन्ध विशेष का निराकारण हो जाता है और व्यंजना के द्वारा उन्हें आनन्दस्वरूप विलक्षण आनछ की अनुभूति होती है।23

आधुनिक (वर्तमान) आचार्य कन्हैयालाल पद्दोर जी के अनुसार-काव्य और नाटकों के सुनने और देखने पर तीन कार्य होते हैं, पिफर उनकी भावना तथा चिंतन किया जाता है, जिसके प्रभाव से सामाजिक यह अनुभव नहीं कर सकते हैं कि काव्य नाटकों में जो सुना और देखा जाता है वह किसी दूसरे से सम्बन्ध रखता है या हमारी ही है। इसके बाद सत्वगुण के उद्रेक और आत्मचैतन्य से प्रकाशित साधारणीकरण रति आदि स्थायी भावों का सामाजिक आस्वाद करने लगते हैं, यही रस है।24

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि साधारणीकरण कवि की व्यक्तिगत अनुभूति का होता है। जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देता है तो वे अनुभूतियाँ सभी के हृदयों में समान अनुभूति को लगाती है। यही साधारणीकरण है। अनुभूतियाँ सभी में होती हैं परन्तु साधारणीकरण की शक्ति सब में नहीं होती। इसलिए अनुभूति और अभिव्यक्ति के होते हुए भी सब नहीं होते, अर्थात् कवि वह होता है, जो अपनी अनुभूति का साधारणीकरण कर सके, जिसे लोकहृदय ही पहचान हो।

संदर्भ सूची:

1. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, सम्पादक डॉ. नगेन्द्र, पृ. 1
2. डॉ. नगेन्द्र, रस-सिद्धान्त, पृ. 321
3. रसादि लक्षणः प्रभेदोवाच्यसामथ्र्याक्षिपतः प्रकाशते, न तु साक्षाच्छभध व्यापारविषम इति वाच्याध् विभिन्न एव। आचार्य आनन्दवर्धन, ध्वन्यलोक
4. डॉ. सत्यदेव चैधरी, भारतीय काव्यशास्त्रा, पृ. 66
5. वी.पी. शर्मा, भक्त रत्नावली, पृ. 100
6. डॉ. जगदेव सिंह विद्यालंकार, हिन्दी काव्यशास्त्रा की नूतन उपलब्धियाँ, पृ. 162
7. डॉ. सत्यव्रत सिंह, पृ. 658
8. डॉ. नगेन्द्र, काव्यालंकार सूत्रा, पृ. 157
9. डॉ. नगेन्द्र, काव्यालंकार सूत्रा, पृ. 185
10. वही
11. डॉ. नगेन्द्र, रस-सिद्धान्त, पृ. 322
12. वही,
13. Dr. Suryakant : Kshemendra Studies, Page-38-39

14. पं॰ बलदेव उपाध्याय: भारतीय साहित्य, पृ. 33

15. डॉ. रामपाल विद्यालंकार, क्षेमेन्द्र की औचित्य दृष्टि, पृ. 10

16. क्षेमेन्द्र, औचित्य विचार चर्चा, पृ. 115

17. क्षेमेन्द्र, औचित्य विचार चर्चा, पृ. 115

18. वही, पृ. 115

19. डॉ. रमेश शर्मा, वक्रोक्ति-सिद्धान्त और भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्रा, पृ. 30

20. कुन्तक, हिन्दी वक्रोक्ति जीवित-व्याख्याकार, आचार्य विश्वेश्वर, पृ. 1

21. डॉ. नगेन्द्र, रस-सिद्धान्त, पृ. 326

22. आचार्य अभिनवगुप्त, हिन्दी अभिनव भारती, पृ. 464, सं॰ सत्यदेव चैधरी, भारतीय काव्यशास्त्रा, पृ. 163

23. डॉ. जगदेव सिंह विद्यालंकार, हिन्दी काव्यशास्त्रा की नूतन उपलब्धियाँ, पृ. 79

24. कन्हैया लाल पद्दोर, काक कल्पद्रुम, भाग-1, पृ. 171-172

Corresponding Author

Hargian*

Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

www.ignited.in